International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 26-03-2022, Accepted: 11-04-2022, Published: 26-04-2022
Volume 8, Issue 2, 2022, Page No. 68-70

हिन्दी साहित्य का इतिहास साहित्य या इतिहास

रुबीना सैफी
असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली, भारत

सारांश
साहित्य का इतिहास और इतिहास समानधर्मी हैं, केवल उनमें विषयवस्तु एवं क्षेत्र संबंधी अंतर है। लेकिन इनके बीच में सिर्फ इतना ही अंतर नहीं है। इनके बीच कई अंतर हैं और ये अंतर ही साहित्य के इतिहास को अन्य विज्ञानों और आम इतिहास से अलग करते हैं। साहित्य का इतिहास, इतिहास है या साहित्य। इस विषय पर विभिन्न विचारकों के अलग–अलग मत रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में साहित्य के इतिहास को इतिहास माना जाए या साहित्य इस पर विभिन्न विचारों के मतों के अनुसार निष्कर्ष तक पहुंचने का प्रयास किया गया है।

मूल शब्दः साहित्य का इतिहास, इतिहास, इतिहास और साहित्य, साहित्य के इतिहास की आवश्यकता

प्रस्तावना
किसी भी मानव समुदाय का सदस्य होने के लिए खुद अपने अतीत के संदर्भ में अवस्थित करना होता हैं, चाहे उस अतीत को खारिज करके ही। इसलिए अतीत मानव चेतना का स्थायी पहलू है। वह मानव समाज की तमाम संस्थाओं, मूल्यों और तरीकों का अभिन्न अंग है। इतिहासकार की समस्या यह होती है कि वह समाज में इस अतीतबोध की प्रवृत्ति का विश्लेषण करे और इसमें आये बदलाओं को पहचाने।[1]
अपने सबसे सरल और व्यापक अर्थ में इतिहास यह समझने की कोशिश है कि होमो सेपिएंस यानी मनुष्य क्यों और कैसे पुरापाषाण युग से आणविक युग तक आये। इतिहासलेखन खास और दुहराये नहीं जा सकनेवाले जीवन और घटनाओं को दर्ज करने से उभरता रहा है।[2] आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के अनुसार घटनाओं के घटित होने की प्रक्रिया अथवा क्रम के लिए ही अधिकांशतः इतिहास शब्द का प्रयोग किया जाता है। साथ ही, इतिहास परंपरा के लिए भी प्रयुक्त होता है। इतिहास परंपरा का आकलन और आलेखन करता है। इतिहास शब्द के प्रयोग पर ही चर्चा करते हुए शर्मा ने कहा है कि इतिहास से एक अभिप्राय किसी देश के कलादर्शन, साहित्य अथवा किसी ऐसी वस्तु के इतिहास का उल्लेख होता है, जो कालक्रमानुसार विकसित हुई है और अपने पीछे एक परंपरा छोड़ आयी है।[3]
एरिक हॉब्सबॉम के अनुसार, मानव जाति के रूपांतरणों पर ध्यान देना इतिहास का मुख्य काम है। अगर हम इस अवधारणा को आर्नल्ड हाउजर की इस धारणा के साथ मिला कर देखें, प्रत्येक कला इतिहासकार टूटन, परिवर्तन और नयी शुरुआतों पर नजर रख कर ही शैली की अपनी धारणा का निर्माण करता है। प्रत्येक लेखक को अंत में एक ही सवाल का सामना करना पड़ता हैः किसी शैली रूप का निरंतर विकास, प्रगतिमान विभिन्नीकरण और तीव्रीकरण किसी एक निश्चित समय पर आकर खत्म क्यों हो जाता है? घटनाओं ने नया मोड़ क्यों ले लिया और लोग सौंदर्य और सत्य के नये मानदंडों की तलाश क्यों करने लगे? पुराना फार्मूला अब भी संतुष्ट क्यों नहीं कर पाता है[4]
तो हम साहित्य के इतिहास की परिभाषा और उसके उद्देश्यों को समझने के नजदीक पहुंच सकते हैं। हम जहां पहुंचते हैं, वह ठीक वही भूमि है, जिस पर खड़े होकर रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य के इतिहास की परिभाषा प्रस्तुत की है। उन्होंने कहा हैः
जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवतन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।[5]
यूरोप में साहित्य के इतिहास की अवधारणा को लेकर मतभेद रहा है। सबसे पहले फ्रेंच इतिहासकार तेने ने अपने इतिहास में यह प्रस्थापना रखी कि साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों के मूल में तीन तत्व सक्रिय होते हैंः जाति, वातारवरण और क्षण विशेष। तेने की व्याख्या इस बात को स्पष्ट करती है कि साहित्येतिहास के लेखन में देश की जातीय परंपराओं, राष्टीय, सामाजिक और सामयिक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है। लेकिन अंगरेजी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार विलियम हडसन की मान्यता है कि साहित्य की विकास प्रक्रिया में साहित्य के व्यक्तित्व और उसकी प्रतिभा की उपक्षा नहीं की जा सकती। जर्मन चिंतकों ने साहित्य के इतिहासलेखन में युग चेतना पर बल दिया है। रूसी आलोचक सैक्युलिन ने साहित्य की प्रवृत्तियों और प्रक्रियाओं का संबंध आर्थिक परिस्थितियों और वर्ग संघर्ष की प्रतिक्रिया से जोड़ा है।
भारत में भी साहित्य के इतिहास की अवधारणाओं पर आलोचक एकमत नहीं है। रामचंद्र शुक्ल की पूर्वोक्त परिभाषा के आगे डॉ रामखेलावन पांडेय ने अपने हिंदी साहित्य का नया इतिहास में लिखा हैः
साहित्येतिहास का लेखक साहित्यकार ही नहीं है, वह वैज्ञानिक है, कला पारखी है, दार्शनिक है और समाजशास्त्री भी। साहित्य को जीवंत और प्राणवंत चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में रूपायित करने का प्रयास आधुनिक काल के साहित्यकार को करना ही होगा।[6]

डॉ शंभुनाथ सिंह ने हिंदी साहित्य की सामाजिक भूमिका में लिखा है

वर्तमान समय में इतिहास के संबंध में विद्वानों की धारणा बहुत बदल तुकी है। उस धारणा के अनुसार इतिहास केवल घटनाओं और व्यक्तियों के जीवन वृत्त का संग्रह नहीं है, न तो वह विचारधाराओं का आकलन मात्र है। वह मानवचेतना की सक्रियता का विवेचनात्मक अभिलेख है। मानव चेतना जिन प्रत्यक्ष या परोक्ष क्रिया–प्रतिक्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त होती है, उनके समग्र रूप का आकलन ही इतिहास है। मानव की प्रत्येक क्रिया उसके परिवेश तथा उसकी अपनी ही अन्य क्रियाओं से विविध रूपों से संबद्ध होती है, इसी कारण वह उसकी चेतना का समग्र अंग होती है। अतः इतिहास मनाव की ही विकास प्रक्रिया का ही दूसरा नाम है। ...अतः भारतीय मानस की विविध क्रिया–प्रतिक्रियाओं से संबद्ध करके ही हिंदी साहित्य के इतिहास को देखा परखा जा सकता है।[7]

डॉ मैनेजर पांडेय के शब्दों में मानव समाज का इतिहास मनुष्य की प्रयोजनयुक्त क्रियाशीलता का परिणाम है, जबकि साहित्य का इतिहास साहित्य संबंधी परिवर्तन और निरंतरता के द्वंदात्मक विकासशील संबंध की व्याख्या से संभव होता है।[8]

इस तरह हम पाते हैं कि साहित्य के इतिहास के अंतर्गत केवल लेखकों व उनकी कृतियों मात्र का ही अध्ययन नहीं किया जाता, बल्कि युग विशेष की समूहगत कृतियों का सामूहिक अध्ययन होता है। साहित्य के इतिहास में एक सुनिश्चित ऐतिहासिक बोध होता है और राष्ट्रीय एवं भाषागत विशेषताओं का उल्लेख भी होता है। साहित्य का इतिहास युग तथा प्रवृत्तियों के विकास की चेतना की खोज करता है। इतिहास लेखन के दौरान इतिहासकार अपने लिए उस विषय वस्तु के चयन तक ही सीमित रखता है, जो अपनी आवश्यकता का बोध कराती है और जिसमें इतिहास के सातत्य का प्रतिनिधित्व होता है। प्रत्येक युग ऐतिहासिक तथ्यों का अपने युग के अनुकूल संगठन करता है और उसकी संरचनात्मक व्याख्या करता है। इतिहास संपूर्ण मानव चेतना की क्रियाशीलता का विवेचनात्मक अभिलेख है एवं साहित्येतिहास को सामान्य मानव इतिहास के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जा सकता है।

इस दृष्टि से यह लग सकता है कि साहित्य का इतिहास और इतिहास समानधर्मी हैं, केवल उनमें विषय वस्तु एवं क्षेत्र संबंधी अंतर है। लेकिन इनके बीच में सिर्फ इतना ही अंतर नहीं है। इनके बीच कई अंतर हैं और ये अंतर ही साहित्य के इतिहास को अन्य विज्ञानों और आम इतिहास से अलग करते हैं।

सुमन राजे के अनुसार इन अंतरों में से मुख्य है भाषा का माध्यम। उनका कहना है कि जिस प्रकार भाषा के माध्यम के कारण साहित्य अन्य ललित कलाओं से विशिष्ट हो जाता है, उसी प्रकार, सामान्य इतिहास से भी वह अपनी सीमा रेखा बना लेता है।[9]

लेकिन सिर्फ भाषा को इतिहास और साहित्य के इतिहास का मुख्य अंतर मान लेना वैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं जान पड़ता। यहां सबसे बड़ा अंतर है अतीत को देखने, उसका मूल्यांकन करने और उस विचार करने की पद्धतियों का। इतिहास में दस्तावेजों, पुरातात्विक साक्ष्यों, तथ्यों और घटनाओं को विवेचना का आधार बनाया जाता है, जबकि साहित्य के इतिहास में रचनाओं का मूल्यांकन, परंपरा का विवेचन और युग की सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना की खोज का काम भी किया जाता है। उसमें रचनाकार की रचनाशीलता के संदर्भ में जीवन की वास्तविकता की मीमांसा होती है। जहां तक इसका संबंध प्रमाणों से है, वहां तक तो यह विज्ञान है और इतिहास के निकट भी है, लेकिन जब तथ्यों के ज्ञान पर आधारित मूल्यांकन में अभिरुचि और संवेदनशीलता की सक्रियता प्रबल होती है तो इतिहास विज्ञान नहीं रहता। साहित्य का इतिहास अपनी विषयवस्तु, जो कि साहित्य है, के कलात्मक रूप और मूल्य की संचेतना के साथ–साथ अपनी कला की प्रकृति के प्रति सतत जागरूकता के कारण ही सामान्य इतिहास से भिन्न होता है।[10]

एक बार रच दिये जाने के बाद साहित्य इतिहास की वस्तु बन जाता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि कोई घटना घट जाने के बाद इतिहास बन जाती है, और उसका एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में उपयोग हो सकता है। लेकिन साहित्य का इतिहास के दस्तावेज के रूप में उपयोग अनेक समस्याओं को जन्म दे सकता है। अतीत के वास्तविक कृत्यों, अनुभूतियों और घटनाओं का जो भी ज्ञान इतिहासकार को होता है, वह दोयम होता है। इतिहास के वे उत्पादन भी–जिनमें सबसे आगे बढ़ कर कला और साहित्य की कृतियां हैं–जिनका अपने आप में अर्थ और महत्व है, जब इतिहास की जीवंत धारा के संदर्भ में देखे जाते हैं तो केवल दस्तावेज सिद्ध होते हैं, अर्थात जो कुछ घटित हुआ, उसके अप्रत्यक्ष प्रमाण मात्र और इसलिए उनकी विविध व्याख्याएं संभव हैं। वे ऐसी ऐतिहासिक संरचनाएं हैं, जो अस्तित्व में आती हैं और विलीन हो जाती हैं, मान्यता प्राप्त करती हैं और फिर खो देती हैं, फिर भी ऐसी महत्वपूर्ण वस्तुएं हैं, जिनका मूल्य पहचाननेवाले के लिए कुछ–कुछ निरपेक्ष होता और कालातीत होता है। उनके जरिये न तो हम उन ऐतिहासिक घटनाओं का वस्तुगत अर्थ खोज सकते है, जिन्हें वे दर्शाती हैं, न ही उन कृतियों का अपने समकालीनों के लिए जो ठीक–ठीक अर्थ और मूल्य था, उसका सटीक अनुमान कर सकते हैं। हम यह भी नहीं समझ सकते कि कि जो मूल्य हम उन्हें प्रदान कर रहे हैं, उसकी किस तरह की वैधता वास्तव में है।[11]

इसके अलावा स्वयं विषयवस्तुओं में जो अंतर है, वह भी साहित्य के इतिहास और सामान्य इतिहास के इस अंतर को जन्म देता है। वे ऐतिहासिक घटनाएं जो इतिहास के लिए तथ्य हैं, वे एक बार घट कर समाप्त हो जाती हैं। इतिहासकार को उन्हें प्राप्त करना पड़ता है, उनका विष्लेषण करना पड़ता है, फिर अपनी व्याख्या के द्वारा वह उनका पुनर्गठन करता है। इस दृष्टि से डब्ल्यू पी केर का यह कथन सही है कि साहित्य की वस्तुएं सदा वर्तमान रहती हैं। उनका सदा इतिहास होता ही नहीं है। साहित्य का इतिहास सही अर्थ में इतिहास नहीं है, क्योंकि यह तो वर्तमान का सर्वव्यापी अनंत वर्तमान का ज्ञान है। जो कुछ ऐतिहासिक और विगत है उसमें और उस चीज में जो ऐतिहासिक होते हुए भी साथ ही किसी न किसी प्रकार वर्तमान है, अंतर तो है ही।[12] उदाहरण के लिए हम जालियांवाला बाग हत्याकांड और गोदान की रचना को ले सकते हैं। भावी राजनीति और समाज पर जालियांवाला हत्याकांड का जितनी भी मात्रा में और जो भी प्रभाव पड़ा हो, यह घटना अपने वास्तविक रूप में आज मौजूद नहीं है और इसके बारे में सिर्फ दस्तावेजों और अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों में ही विवरण मिल सकता है। जबकि एक रचना के रूप में (और एक घटना के रूप में भी) गोदान अब भी उसी रूप में मौजूद है, जिस रूप में उसकी रचना हुई थी। किसी भी साहित्य के इतिहासकार के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में स्वयं सभी कृतियां हमेशा मौजूद रहती हैं (अगर वे किन्हीं कारणों से नष्ट न हो जायें या कर दी जायें)।

इसके अलावा कुछ विद्वानों का मत है कि साहित्य का इतिहास नहीं होता, इतिहास साहित्य लिखनेवालों का होता है। इस दृष्टि से साहित्य का इतिहास भाषा और दर्शन के इतिहास के समकक्ष रखा जा सकता है, हालांकि कुछ अर्थो में ही।[13]

संदर्भ

1. हॉब्सबॉम, एरिक जे, इतिहासकार की चिंता, अनुः कृष्ण चौतन्य व गोपाल प्रधान, ग्रंथशिल्पी, नयी दिल्ली, 2007, पृष्ठः 26
2. हॉब्सबॉम पृष्ठः 48, 84, एरिक जे, इतिहासकार की चिंता, अनुः कृष्ण चौतन्य व गोपाल प्रधान, ग्रंथशिल्पी, नयी दिल्ली, 2007, पृष्ठः 48, 84
3. राजे, डॉ सुमन, साहित्येतिहास रू संरचना और स्वरूप, डॉ सुमन राजे, ग्रंथम, कानपुर, 975, पृष्ठः 78
4. हाउजर, आर्नल्ड, कला का इतिहास दर्शन, अनु रू गोपाल प्रधान, ग्रंथशिल्पी, नया दिल्ली, 200, पृष्ठः 499
5. उद्धृत, साहित्येतिहास रू संरचना और स्वरूप, डॉ सुमन राजे, ग्रंथम, कानपुर, 975, पृष्ठः 9
6. उद्धृत, राजे, डॉ सुमन, वही, पृष्ठः 9
7. उद्धृत, राजे, डॉ सुमन, वही, पृष्ठः 12
8. पांडेय, डॉ मैनेजर, साहित्य का इतिहास क्या है, आलोचना, जनवरी–मार्च, 973, पृष्ठः 6
9. उद्धृत, राजे, डॉ सुमन, वही, पृष्ठः 92
10. पांडेय, डॉ मैनेजर, वही, पृष्ठः 15
11. हाउजर, आर्नलड, वही, पृष्ठः 37
12. राजे, डॉ सुमन, वही पृष्ठः 92
13. राजे, डॉ सुमन, वही पृष्ठः 92